अवतार है। साक्षात् ईश्वर पूजा का उपदेश देता है।[1]

२१. पं० ताराचरण चरणों में गिर पड़ा

हुगली के उस पार भाटपाडा ग्राम के पं० तारा चरण भट्टाचार्य राजा यतीन्द्र मोहन व सुरेन्द्र मोहन ठाकुर के पास जाते और कहते कि आज स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने चलूँगा। क्योंकि वह गये ही नहीं अत: उनकी यह डींग निरर्थक समझी गई कि स्वामी जी का तो हमारे सामने मुँह बन्द हो जावेगा। अन्तत: स्वामी जी ने उन्हें विशेष अनुरोध करके बुलवाया तो आते ही आपने सत्तर प्रश्न कर दिये जिन्हें वह अति कठिन तथा अद्वितीय (जिसका उत्तर ही न दिया जा सके) समझते थे परन्तु स्वामी जी महाराज ने २२-२३ उत्तरों में ही सब प्रश्नों को निपटा दिया।[2]

ऐसे अकाट्य तथा अद्भुत उत्तर पाकर पण्डित जी स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े। दूसरी बार श्रीमहाराज जब कोलकाता आये तो मिर्ज़ापुर के प्रकाण्ड पं० मोती राम जी यहीं थे तथा संयोग से ताराचरण भी यहीं उतरे। उन्होंने वार्तालाप करते समय पं० मोतीराम को ये शब्द कहे, "आश्चर्य है कि हमने जब प्रश्न किये थे तब यह सोचा था कि इनका उत्तर देने वाला धरती तल पर कोई भी नहीं परन्तु उन्होंने तो झटपट सबके उत्तर दे दिये।

२२. मैं आपके समान सत्य सत्य नहीं कह सकता

हुगली में नगर के प्रतिष्ठित श्रीमन्त सज्जनों ने स्वामी जी का एक सभा में व्याख्यान करवाया। तारा चरण व्याख्यान में तो किसी के कहने पर भी उपस्थित न हुए परन्तु मकान के ऊपर

---

१. सरदार अतरसिंह की ऋषि-भक्ति का उल्लेख तो कई जीवनी लेखकों ने किया है। यह घटना मुकम्मिल जीवन चरित्र में विस्तार से दी गई है। 'जिज्ञासु'

२. देवेन्द्रबाबू जी ने यह घटना नहीं दी। महर्षि की निन्दा में प्रकाशित प्रथम पुस्तक 'दयानन्द छल कपट दर्पण' के लेखक जियालाल जैनी ने भी ऋषि को शास्त्रार्थ करने में अद्वितीय लिखा है। 'जिज्ञासु'

चढ़कर गर्जने लगे। इससे लोगों का मत उनके विरुद्ध हो गया। अगले दिन स्वामी जी ने उनके बारे यह पता चलने पर कहा कि अहंकार करना अथवा अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना पण्डितों का काम नहीं है। यह मूर्खों का काम है।

यदि वह ऐसे ही अहंकार में डूबे जाते हैं तो उन्हें एक बारे मेरे सामने लाओ सम्भवत: डूबने से बच जावें। अन्त में आठ अप्रैल १८७३ को शास्त्रार्थ हुआ जो बहुत लम्बे समय तक चला। इस शास्त्रार्थ में ताराचरण स्वयं ही मूर्तिपूजा का खण्डन करने लगे। इस पर कुछ व्यक्ति उठ खड़े हुये। "खेद है! कि पण्डित जी आये तो थे इस अभिमान व दावा के साथ कि मैं मूर्तिपूजा सिद्ध करूँगा परन्तु यहाँ उसका खण्डन करने में लग गये।"

सत्य कहूँ तो काशी नरेश निकाल देवें:— यही स्वामी जी ने कहा तो पण्डित जी चुपचाप ऊपर के मकान पर चले गये। स्वामी जी ने सीढ़ियों में पहुँचकर पण्डित जी का हाथ अपने हाथ में लिया और ऊपर चले आये और पण्डित जी से कहा, आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं? पण्डित जी ने उत्तर दिया, "मैं तो लोक भाषा का खण्डन करता हूँ। नित्य शास्त्र पढ़ने पढ़ाने का उपदेश देता हूँ तथा पाषाण आदि मूर्ति को भी मिथ्या ही जानता हूँ परन्तु क्या करूँ? सत्य कहूँ तो आजीविका चली जावे। और काशी राज महाराज मुझे निकालकर बाहर कर दें। इसलिये मैं आपके समान सत्य सत्य नहीं कह सकता।[१]

२३. मेरे आगे पर्दः डाल दो परन्तु शास्त्रार्थ अवश्य करें

२३. छपरा बिहार में एक प्रतिष्ठित भूपति शिवगुलाम साह

१. यही पं० श्रद्धाराम फलौरी की दुर्बलता थी। उन्होंने जीतेजी यह प्रकट ही नहीं किया कि वह नास्तिक हैं। मूर्तिपूजा उदर पूर्ति का एक उत्तम साधन था। पाषाण पूजा का झण्डा उठाकर ऋषि के विरोध में क्या नहीं किया। यह ठीक है मरने से पहले ऋषि का गुणगान करते हुए उन्हें एक लम्बा पत्र लिखा जो कुछ ही वर्ष पूर्व ऋषि के रिकार्ड में मिला। 'जिज्ञासु'

के पास श्री महाराज का डेरा था। महर्षि के विद्या आदि गुणों के कारण भूपति के महर्षि के प्रति श्रद्धा व प्रेम बढ़ता गया। इससे विरोधियों के मन में ईर्ष्या द्वेष भी बढ़ता ही गया। वे लोग स्वामी जी को नास्तिक व किराणी इत्यादि कहने लगे। यह षड्यन्त्र रचा कि युक्तियों से न हो सके तो लाठियों की भार से स्वामी जी को निरुत्तर कर दो।

नास्तिक का मुख नहीं देखूँगाः– उधर स्वामी जी ने शास्त्रार्थ का खुला नोटिस दे दिया। इस पर एक लोकप्रिय पुरोहित पं० श्री जगन्नाथ के पास सभी विरोधी पहुँचे परन्तु उसने यह कहकर शास्त्रार्थ करने से इनकार कर दिया कि मैं इस नास्तिक का मुख नहीं देखूँगा।

स्वामी जी ने कहा कि यदि वह किसी प्रकार से अपने मत को सिद्ध कर सकता है तो उसे अवश्य लावें। मेरे मुख के सामने पर्दः डाल दो। इस प्रकार वह बात भी करेगा और उसे पाप भी न लगेगा। ऐसा ही किया गया परन्तु जब उसके भाषण में स्वामी जी ने प्रत्येक प्रकार की अशुद्धियाँ दिखलाईं तो वह सर्वथा निरुत्तर हो गया। सबको विश्वास हो गया कि वह निपट अज्ञानी मूर्ख व अभिमानी है।

उसके पश्चात् स्वामी जी चार घंटे व्याख्यान देते रहे। विरोधियों को जब अपनी पराजय का निश्चय हो गया तो बोल उठे कि वेदों का अनर्थ हो रहे हैं। स्वामी जी वेदों का तिरस्कार कर रहे हैं। जो अधिक शरारती थे वे यह कहते हुए भाग खड़े हुए कि स्वामी जी मार्ग में कहीं मिल गये तो पत्थर मार-मार कर मार डालेंगे परन्तु इन सब बातों के होते हुए शिवगुलाम साह को निश्चय हो गया कि स्वामी जी सत्य पर हैं तथा ब्राह्मण व्यर्थ में गोल माल करते हैं।[1]

---

१. यह घटना 'बिहार दर्पण' के मई १८७३ के अंक के आधार पं० लेखराम जी ने दी है। 'जिज्ञासु'

२४. सत्य का प्रभाव

मथुरा में एक पाण्डे मदनदत्त नाम का व्यक्ति था। वह सारे शरीर पर छाप लगाय, तिलक चढ़ाये, गुदड़ी ओढ़े स्वामी जी से मिलने आया। आपकी आयु अस्सी वर्ष की थी। यह पाण्डे जी चालीस वर्ष से दूधाहारी थे। वार्तालाप करते हुए श्री स्वामी जी ने मदनदत्त जी के पौत्र से पढ़ाई के बारे पूछा। उसने उत्तर दिया, "व्याकरण पढ़ता हूँ।"

स्वामी जी ने एक सूत्र पूछा तो वह उत्तर न दे पाया। तब मदनदत्त के शिष्य पं० बालकृष्ण ने उत्तर दिया। स्वामी जी मदनदत्त पर रुष्ट हुए कि आपने अपने पौत्र को बिगाड़ दिया है। ऐसा ही रहा तो महामूर्ख हो जायेगा। तब बालकृष्ण से पूछा, "तुम क्या पढ़ते हो?"

वह बोला, "कौमुदी।"

स्वामी जी ने कहा, "कौमुदी बुद्धि को बिगाड़ देती है। अष्टाध्यायी पढ़ा कर।"

उसने उसी दिन से अष्टाध्यायी का पढ़ना आरम्भ कर दिया। मदनदत्त जी पर स्वामी जी की सच्चाई का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह जो घर से मूर्तिपूजा सिद्ध करने आये थे स्वामी जी के सामने ही मूर्ति तथा समस्त वेद विरुद्ध सम्प्रदायों का खण्डन करने लगे तथा देर तक करते रहे। सब लोग दंग होकर यह कहने लगे कि न जाने स्वामी जी के पास क्या जादू है।

२५. काशी नरेश का पश्चात्ताप

काशी नरेश[१] ने यद्यपि प्रथम बार ऋषिवर का विरोध किया परन्तु यह केवल एक अस्थायी बात थी। उन्हें इसके पश्चात् पश्चात्ताप हुआ। जब जून १८७४ को ऋषि काशी पधारे तो राजा महोदय ने उन्हें लाने के लिये बग्घी भेजी परन्तु ऋषि जी प्रथम दिन नहीं गये। दूसरे दिन फिर बग्घी गई तथा चोबदार आदि भी

१. राजा का नाम ईश्वरी नारायण सिंह था। 'जिज्ञासु'

आये। स्वामी जी एक दो पुरुषों को रोकने पर भी सद्भावना से चले गये।

राजा महोदय ने बहुत सेवा सत्कार किया। सोने की कुर्सी पर आपको बिठाया गया और कहा, "आप जो चाहें खण्डन करें। मैं अपने दोष (भूल चूक) के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।"

थोड़ी देर के पश्चात् उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया फिर एक मन मिठाई उनके डेरे पर भिजवाई जो स्वामी जी महाराज ने लोगों में वितरित करवा दी।

२६. गुजराँवाला में ईसाइयों से शास्त्रार्थ

जब यहाँ स्वामी जी का आगमन हुआ तब वहाँ मिशन स्कूल उन्नति पर था। पादरियों ने ब्राह्मणों को प्रेरित किया कि वे उनसे शास्त्रार्थ करें परन्तु किसी को साहस न हुआ। कई धनीमानी लोगों ने पं० ज्वालादत्त को जोश दिलाया परन्तु वह बोला, आप शास्त्रार्थ के लिए कहते हैं परन्तु हम स्वामी जी के दर्शन भी करें तो बिस्तरों सहित स्नान करें। तब कहीं जाकर शुद्ध हों। हम उसके पास नहीं जावेंगे। पण्डितों की बहुत खोज की गई परन्तु वे नगर छोड़कर ही लोप हो गये।

अन्त को पं० विद्याधार जी के पास पहुँचे जो यहाँ के एक जानेमाने भद्रपुरुष व नामी विद्वान् थे। वह एक पाठशाला के अध्यापक थे। उन्होंने कहा, "हमारा कोई मतभेद है तो वह घर का है जिस पर हम स्वयं कभी उनसे बात करेंगे।" अब ईसाइयों के कहने पर अपने घर में झगड़ा डालना उचित नहीं है। यही उत्तर उन्होंने ईसाइयों को भेजा। फिर विवश होकर ईसाइयों को आप ही शास्त्रार्थ करना पड़ा।

१९ फरवरी १८७८ को सायंकाल समय स्वामी जी गिरजाघर में पधारे। बहुत से अंग्रेज़ मिशनरी व देसी पादरी, सभी अंग्रेज़ तथा देशी राज्य अधिकारी तथा प्रतिष्ठित धनीमानी लोग इस में सम्मिलित हुए। टिकट लेकर ही कोई भीतर प्रवेश कर सकता था। परन्तु ईसाइयों ने अन्याय नीति से काम लिया। अपने

अधिक व्यक्तियों को प्रवेश दिया। शास्त्रार्थ में इञ्जील की अच्छी पोल खोली गई। लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। गिरजाघर में स्थान की कमी थी। बहुत से लोग लौट गये। यह स्थान था भी तो एक पक्ष का। अतः ईसाइयों को किसी खुले सार्वजनिक स्थान की व्यवस्था के लिये कहा गया परन्तु उन्होंने एक विचित्र चतुराई करके अगले दिन बारह बजे ही गिरजा में पादरियों व लड़कों को बुलवा लिया।

स्वामी जी को सूचना दी गई। वे तब वेद भाष्य के कार्य में संलग्न थे। यह सूचना महाराज को जब मिली तो वे बहुत चकित रह गये। दोनों पक्षों ने सहमति से चार बजे का समय नियत किया था अब बिना पूछे बारह बजे का समय कैसे बदल दिया गया? स्थान की तंगी की बात भी कही गई। क्या उसका यही उत्तर है? यह समय हमार वेद भाष्य का है जो हमारे लिये सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। स्वामी जी ने कहला भेजा कि हम तो चार बजे नियत समय पर ही आवेंगे। यही सबको पता है।

पादरियों ने स्वामी जी हार गये यह कहकर कार्यक्रम बन्द कर दिया। नियत समय पर बाग़ महासिंह के निकट बड़ी अच्छी तैयारी करके पादरियों को बारबार बुलवाया गया परन्तु कोई नहीं आया। पौन घण्टा प्रतीक्षा करके स्वामीजी ने इञ्जीली मन्तव्यों पर भाषण दिया। ईसाई मत का रोचक शैली में विद्वत्तापूर्ण खण्डन किया गया। उपस्थिति सब दिनों से अधिक हुई। इसके पश्चात् भी दस बारह दिन तक ऋषि यहीं रहे परन्तु किसी भी पादरी में सामने आकर बात करने का साहस नहीं हुआ।

२७. महात्मा मुंशीराम जी नास्तिक से आस्तिक बने

जब ऋषिवर बरेली गये तब महात्मा मुंशीराम कालेज की छुट्टियों के कारण अपने पिता जी के पास आये हुए थे। उनके पिता ला० नानकचन्द जी तब बरेली में कोतवाल थे। विचारों से आप नास्तिक थे। वेद का तो नाम तक भी नहीं सुना था।

आपका यह दृढ़ मत था कि संस्कृत में निरर्थकता भर रखी है। इसमें बुद्धि की कोई बात हो नहीं अत: वह संस्कृत की शिक्षा की ओर नाम मात्र की ही रुचि रखते थे।

आपके पिता पौराणिक विचारों के थे। प्रतिदिन तीन-तीन घण्टे पूजापाठ करते थे। स्वामी जी के प्रथम व्याख्यान में आप भी सम्मिलित थे। आते ही कहने लगे, "मुंशीराम, एक दण्डी स्वामी बड़े विद्वान् योगी पुरुष आये हैं। सकल संशय उनकी वक्तृता सुनने से दूर होंगे। पिता जी यह चाहते थे कि वह नास्तिकपन के गर्त से निकल आवे।"

अगले दिन वह पुत्र सहित वहाँ पहुँचे। पहले तो दर्शन करते ही बहुत श्रद्धा उत्पन्न हो गई फिर जब देखा कि पादरी स्काट व अन्य अंग्रेज़ आपके व्याख्यान को सुनने के लिये बड़े उत्सुक हैं तो और भी श्रद्धा बढ़ी। अभी दस मिनट भी व्याख्यान न सुना होगा कि मन में विचारने लगे कि मैं तो समझता था कि संस्कृत के जानने वाले भी क्या बुद्धि की बात करेंगे? यह भी निराला व्यक्ति है कि केवल संस्कृत का विद्वान् होकर ऐसी तार्किक बातें कहता है कि जन साधारण दंग रह जाते हैं।

व्याख्यान ईश्वर के निज नाम ओ३म् पर था। इससे अत्यन्त आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो रही थी। फिर मूर्तिपूजा का खण्डन किया जिससे मुंशीराम बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु पिता जी जानने से सुकचाने लगे। आपने कहा, "योगीराज दण्डी स्वामी संन्यासी हैं यह सब कुछ कह सकते हैं परन्तु हम गृहस्थों को तो इसी पर आचरण करना चाहिये:-

हरि हर निन्दा सुने जो काना
होय पाप गोघात समाना

महात्मा जी लगातार व्याख्यानसुनते रहे। यहां पादरी स्काट से शास्त्रार्थ भी हुआ था। उसमें भी आप सम्मिलित हुए। इसके अतिरिक्त प्रातःकाल के समय स्वामी जी की दौड़ तथा व्यायाम भी सुरुचि से देखे। स्वयं भी वैसा ही करने का प्रयास करते रहे। समग्र व्यवहार का हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था परन्तु

नास्तिकपन का अभिमान दूर नहीं होता था। आप यह कहते थे और तो सब बातें ठीक हैं परन्तु स्वामी जी वेद व ईश्वर का मानना छोड़ दें तो फिर कोई भी उनका सामना नहीं कर सकेगा।

इसी अभिमान में आपने एक बार महर्षि जी से ईश्वर विषय पर प्रश्नोत्तर अथवा विवाद किया और पाँच ही मिनट में निरुत्तर होकर कहने लगे, "आपकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण है। आप ने मेरी जिह्वा बन्द कर दी। परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर नाम की कोई सत्ता है भी।"

दूसरी व तीसरी बारी फिर निरुत्तर हुए और वही शब्द फिर दोहराये। जब स्वामी जी पहले तो मुस्कराये फिर कहा, "देखिये! तुमने प्रश्न किये और मैंने उत्तर दिये। यह युक्ति की बात थी। मैंने कब आश्वासन दिया था कि ईश्वर पर तुम्हारा विश्वास करवा दूँगा। विश्वास आपका तभी होगा जब ईश्वर स्वयं अपने ऊपर आपका विश्वास करवायेंगे।"

ऋषिवर ने एक उपनिषद वाक्य भी इसी विषय में सुनाया और हुआ भी ऐसा ही। उस समय तो महात्मा जी नास्तिक ही रहे परन्तु परमात्मा की दया हुई और अन्ततः ईश्वर पर उनका विश्वास हो गया तब उन्होंने ऋषि के कथन को स्मरण किया तथा मस्तिष्क से नस्तिकता का अभिमान निकल गया। आपने अत्यन्त श्रद्धा से स्वामी जी के कथन के सामने सिर झुकाया।[1]

२८. फ़र्रुख़ाबाद के शास्त्री जी चक्कर खाने लगे

फ़र्रुख़ाबाद में एक बार बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। स्वामी जी महाराज कुछ बातें कहते और निरक्षर, स्वार्थी कुछ और ही प्रचारित कर देते हैं। एक भाषण में आपने गो–रक्षा के लाभ व उसे मारने की हानियाँ बताईं परन्तु विरोधियों ने यह

---

१. यह घटना महर्षि के बरेली प्रवास की है। ऋषिवर १४ अगस्त सन् १८७४ से ४ सितम्बर १८७९ ई० तक बेरली में अमृत वर्षा करते रहे। राधा स्वामी गुरु हजूर जी महाराज (श्री शिव्रतलाल) ने ऋषि जीवन पर अपनी पुस्तक में लिखा है तब महात्मा मुंशी राम के अतिरिक्त और भी कई युवकों पर महाराज का गहरा प्रभाव पड़ा। उनमें से एक शिवव्रत लालजी स्वयं थे। आर्य समाजी नेता बैरिस्टर रोशनलाल का जीवन भी तभी पलट गया। 'जिज्ञासु'

प्रचारित कर दिया कि यह गो माता को पशु कहते हैं तथा उसके मारने में दोष नहीं बताते हैं।

ऐसी-ऐसी बेतुकी बातों से सुयोग्य सज्जन पुरुष कब भ्रमित होते हैं। जब स्वामी जी के प्रस्थान करने का समय निकट आया तो एक सभा लगाई गई और उसमें निश्चय हुआ कि स्वामीजी को २५ प्रश्न बनाकर भेजे जायें। वह तो चलने को तैयार हैं। उन्हें उत्तर देने का अवसर ही कहाँ मिलेगा? बस! सारे नगर में यह प्रचार कर देंगे कि स्वामी जी उत्तर नहीं दे पाया।

पं० पातीराम शास्त्री १२ अन्य व्यक्तियों को साथ लेकर प्रश्न लेकर पहुँचे। स्वामी जी ने उन्हें सत्कारपूर्वक बिठाया। कुशलक्षेम पूछा। एक व्यक्ति ने शास्त्री जी को धीरे से कहा, "आप कुछ छेड़िये।" स्वामी जी ने ये शब्द सुन लिये और कहा, "भाई, धर्मवार्ता में विलम्ब मत करें। जो कुछ कहना व पूछना हो पूछिये।" बस इतना कहना था कि शास्त्री जी शरीर में स्वेद के कारण उनके वस्त्र ही भीग गये।

कुछ समय के पश्चात् उनके साथी उनको बाहर ले गये। उनको खुली वायु में बिठाया। उनके शरीर को अंगोछे से पूँछा। साथियों ने पूछा, "कैसे हो"? कहा, "भाई! मैं आज कुछ भी नहीं कह सकता। मेरा सिर चक्करा रहा है।"

फिर प्रश्न सबकी ओर से आये। स्वामी जी ने सबके उत्तर तत्काल लिखवा दिये।[१]

२९. कौन गंगा प्रवाह पूर्व से पश्चिम को करे?

काशी में स्वामी जी महाराज ने पं० मोतीराम को कहा, "आप विशुद्धानन्द स्वामी को क्यों सत्य पर दृढ़ नहीं करते? आप तथा वह एक ही गुरु के शिष्य हैं। वह सामने होकर शास्त्रार्थ कर लें। या तो वह छोड़ दें या हम छोड़ दें" परन्तु विशुद्धानन्द जी तो पहले ही उत्तर दे चुके थे कि हम स्वामी हैं।

१. यह घटना ५ अक्तूबर १८७९ की है। कुछ जीवनी लेखकों ने लिखा है कि बाबू बलदेव प्रसाद हैडमास्टर गवर्नमेन्ट स्कूल के नाम से स्वामी जी की सेवा में प्रश्न भेजे गये। 'जिज्ञासु'

हमें शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं तो भी स्वामी जी महाराज के कहने पर विशुद्धानन्द जी के पास गये और कहा, "काशी में इतने विद्वान् हैं परन्तु एक ही विद्वान् ने सबको मथन कर डाला है। कोई भी उत्तर नहीं देता इसलिये उठो बाल शास्त्री को लेकर सामना करो। सारी काशी तुम्हारे हाथ में है।"

विशुद्धानन्द बोले, "तुम भी उनके संग वैसे ही हो गये।" पण्डित मोतीराम ने कहा, "हमारा संग पहले तुम्हारे से है और सम्बन्ध भी बहुत पुराना है परन्तु जो वह कहते हैं उसे सुनकर हमारे चित में खटका है कि वह सत्य कहते हैं।" विशुद्धानन्द जी बोले, "तुम यह कैसे कहते हो कि वह सत्य कहते हैं।"

पण्डित मोतीराम ने कहा, "वेद तथा व्याकरण से तो वह प्रमाण देते हैं परन्तु किसी आर्ष ग्रन्थ में मूर्तिपूजा का प्रमाण नहीं।" विशुद्धानन्द बोले, "यही तो कमी है। दयानन्द वेद के अर्थ लगा लेता है परन्तु यहाँ के विद्वानों में से किसी को भी वेद का अर्थ नहीं लगता केवल गणेश श्रोत्रिय वेद के अर्थ जानने वाला है तो वह भी इनसे मिला हुआ है। दूसरे वह शास्त्रार्थ ही वेद विषय पर करते हैं। वेद के अर्थ लगाना यहाँ कोई नहीं जानता। इस लिये कौन उसका सामना करने में समर्थ हो?"

मोतीराम जी:–"आप भी सरस्वती हैं और वह भी। दोनों एक हो जाओ तथा सद्धर्म पर दृढ़ हो जाओ।" विशुद्धानन्द जी ने कहा, "सत्य पर दृढ़ तो हो जायें परन्तु गंगा जी का प्रवाह पूर्व की ओर बह रहा है। कौन है जो इसे पश्चिम अथवा उत्तर को कर दे? यह जो प्रवाह अब चल पड़ा है अब रुक नहीं सकता और यदि आज हम इसके ऊपर खेती कर दें तो सब विरोध करने लग जायें।"

पं० मोतीराम:–"आपको विरोध तथा हठ से क्या लाभ?" विशुद्धानन्द जी बोले, **"भिक्षा जो देते हैं वे भी साले न देंगे और दोष लगायेंगे कि स्वामी जी के अनुयायी हो गये।"**

स्वामी जी ने जब ये बातें सुनीं तो वे बोले, "व्यर्थ का भय

लगा हुआ है। संसार विरोध में होकर कया करेगा? यदि उनको भय ही लग रहा है तो हम उनको एक स्थान पर स्थापन कर देंगे। वह काशी में बैठ जावें और देश भ्रमण हम करेंगे। वह क्यों नहीं सत्य पर दृढ़ होता? परन्तु इन सब बातों को सुनकर भी विशुद्धानन्द ने यही कहला भेजा कि वह तो अवधूत है। नि:शङ्क खण्डन करता है। हम ऐसा नहीं कर सकते।[१]

३०. मृतक श्राद्ध पर रोचक चर्चा

मुज़फ्फ़रनगर में स्वामी जी महाराज कनागतों में गये। इस लिये श्राद्ध विषय में सबकी रुचि थी। एक दिन बहुत लोगों की उपस्थिति में ला० भगवानदास जी वकील ने बात चला दी मृत पितरों के निमित्त जो सङ्कल्प किया जावे वह क्यों नहीं पहुँचता।

स्वामी जी:– पुण्य का सङ्कल्प पहुँचता है तो पाप का सङ्कल्प भी पहुँचा सकेंगे। वकील ने सरकार से रुपया लेना हो तो वह जिसके नाम चाहे उसे करवा (Transfer) दे। यदि मुझे अधिकार दे तो मैं ले सकता हूँ परन्तु शारीरिक दण्ड तो अपराधी ही भोगता है। यही नियम फिर परमेश्वर के यहाँ होना चाहिये।

स्वामी जी:– न्याय के दो अंग हैं। कुकर्मों का दण्ड तथा सत्कर्मों का सुख रूप फल। ईश्वर की भक्ति अथवा लोगों का उपकार करने वालों को सुख रूप फल मिलना चाहिये अन्यथा अन्याय होगा। इसी प्रकार देवदत्त ने पाप किये तो दण्ड मिलना चाहिये परन्तु उसके पुत्र ने पुण्य करके उसके नाम कर दिये तो परिणाम क्या हुआ? पुत्र जिसने पुण्य किया फल से वञ्चित रहा और पिता जिसे दण्ड मिलना था वह दण्ड से बच गया। इस प्रकार न्याय व्यवस्था के दोनों अंग निरर्थक ही गये। परमात्मा ऐसा कदापि नहीं कर सकता।

अत: पितरों को पुण्य पहुँचाना सर्वथा असम्भव है। तब अनरेबल ला० निहालचन्द बोले कि क्योंकि पिता की कमाई को ही सन्तान पुण्य कर्मों में व्यय करती है अत: मृतक को

१. यह घटना सन् १८८० में काशी में घटी थी। 'जिज्ञासु'

फल मिलना चाहिये।

स्वामी जी:– मृतक द्वारा संग्रहीत धन को पुत्र चाहे श्रेष्ठ कर्मों में लगावे अथवा खोटे कामों में व्यय करे उसका फल पुत्र को ही प्राप्त होगा। क्योंकि यदि पुण्य में व्यय करने से मृतक को लाभ हो तो फिर पाप में व्यय करने से उसे हानि पहुँचेगी और क्योंकि प्राय: पिता द्वारा संग्रहीत धन से संतान बिगड़ती है अत: पितरों का इस नियम से विपदा-अकल्याण ही अकल्याण है।[१]

३१. जब बिशप निरुत्तर हो गये

आगरा में श्री स्वामी जी महाराज कई सज्जनों सहित रोमन कैथोलिक चर्च के सहायक बिशप से मिले। तब स्वामी जी ने कहा कि हम लोग जो ईश्वर विश्वासी हैं मिलकर कार्य करें तो परिणाम बहुत अच्छा होगा। पहले तो हम सब सत्य बातों पर विचार करें तथा एक मत हो जावें फिर केवल नास्तिक लोगों से टक्कर लें जिन्हें हम युक्तियों से मनवा लेंगे।

बिशप महोदय बोले कि ऐसा होना असम्भव है। न तो मुसलमान हलाल करना छोड़ेंगे और न ही ईसाई मांस भक्षण तजेंगे। खुदा है तो अवश्य परन्तु न उसका रूप दिखाई दे और न ही वह बोले। इस लिये संसार में उसका कोई प्रतिनिधि (substitute) आना चाहिये यथा सम्राज्ञी की ओर से वायसराय भारत में कार्यरत है। ऐसे ही हज़रत मसीह के बिना कार्य नहीं चल सकता।

स्वामी जी ने उनके दिये उदाहरण को मिथ्या सिद्ध कर दिया। कहा कि उसे किसी प्रतिनिधि की सिफ़ारिश सुनने की आवश्यकता ही नहीं। वह किसी की भी सहायता पर आश्रित नहीं है। वह सब कार्य-सारी व्यवस्था बड़ी सुगमता से कर सकता है। बिशप महोदय ने कहा, "किस प्रकार से?"

स्वामी जी ने कहा, "अपने सद्ज्ञान नित्य विधान वेद द्वारा।"

१. यह घटना सितम्बर १८८० की है। 'जिज्ञासु'

इस पर वेद विषय में बात चली तो बिशप महोदय ने पूछा, "जिन अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा पर वेद का प्रकाश हुआ अब उनका उत्तराधिकारी कौन है?"

स्वामी जी महाराज ने कहा, "सहस्रों लाखों ऋषि प्रत्येक युग में उनके उत्तराधिकारी हुये और जो भी ऋषियों की मर्यादा पर चले वह उनका उत्तराधिकारी हो सकता है। जो भूल हम लोगों से हो वह पोप ही ठीक करता हैस्वामीजी ने कहा, "जो भूल पोप से हो उसका सुधार? आपको उन दोषों बुराइयों का ज्ञान होगा ही जो लूथर से पूर्व अथवा लूथर के समय में तथा उसके पश्चात् पोपों ने कीं। मजहबी जिहाद (Crusade) हत्याओं रक्तपात का भी पता होगा जिनका मूल स्रोत (कारण) स्वयं पोप है तो वह स्वयं क्या सुधार कर सकता है? यह बात हमारे पोपों (पोंगा पंथियों) सरीखी है।" पोप महोदय इसका उत्तर न दे सकें।[१]

३२. जैन मत की तो जड़ ही हिल गई

श्री स्वामी जी महाराज मसूदा राज्य (राजस्थान) में गये। वहाँ के राव साहेब ने अपने राज्य के प्रतिष्ठित जैनियों को एकत्रित किया और कहा कि आप अपने किसी विद्वान् को बुलायें। स्वामी जी से सत्यासत्य का शास्त्रार्थ करके निर्णय किया जावे। जैनियों ने साधु सिद्धकरण जी को बुलाने का सुझाव रखा जो चतुर्मास के कारण स्वयं ही वहाँ आने वाला था।

वह वहाँ आया। स्वामी जी ९ जुलाई १८८१ को भ्रमण को बाहर निकले तो साधु से उनका मेल हो गया। सामान्य सी बातचीत हुई। साधु ने एक आध बात मनोविनोद की कर दी। स्वामी जी ने इसका उत्तर न देकर मुख पर पट्टी बाँधने का कारण पूछा। राव साहेब दूरदर्शी यन्त्र लगा कर स्वामी जी को भ्रमण करते देखा करते थे। आज भी आप ने वैसा ही किया। किसी से बात करते देखकर घोड़े पर सवार होकर वहाँ पहुँचे।

वह साधु उन्हें देखकर चलने लगा। राव साहेब ने रोका परन्तु

१. यह घटना सन् १८८०-१८८१ की है। 'जिज्ञासु'

वह चले गये। साधु के पास कुछ लिखित प्रश्न भेजे गये।

उनमें जैन मत की कुछ बातों का युक्तियुक्त खण्डन किया गया था। राव साहेब का मंत्री यह पत्र लेकर गया परन्तु साधु ने कहा कि हम उत्तर तब देंगे जब तुम मुख पर पट्टी बाँध लोगे। उसने कहा कि हम तो इसे पाप मानते हैं। आप प्रश्नों का उत्तर दें। जब आप इसे सिद्ध कर लेंगे तो हम सहर्ष पट्टी बाँध लेंगे। और भी जो बात आप कहेंगे स्वीकार करेंगे।

यह सुनकर साधु बोला "मैं उत्तर नहीं दे सकता। वह उठकर भीतर चला गया परन्तु तीसरे दिन उसने उत्तर लिखकर भेजे जो कतई अनुचित थे। स्वामी जी उन पर युक्तिपूर्वक विस्तृत आक्षेप किया। वे कई लोग लेकर उसके पास गये। उसे पत्र सुनाकर उत्तर माँगा तो साधु जी के छक्के छूट गये। बहुत कहने पर उसने इतना कहा कि हमारे से तो कोई उत्तर बन नहीं पाता। हम तो साधु हैं। इससे अधिक कुछ कहना अनुचित जानकर ये लोग चले गये।

स्वामी जी के इन लेखों व व्याख्यानों की जैन लोगों में बहुत चर्चा चली। कई जैनियों ने खुल्लम खुला वैदिक धर्म स्वीकार किया और उनकी विनती पर वहाँ बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण करने की प्रार्थना की तो उन्हें भी राजपूतों व ब्राह्मणों के साथ यज्ञोपवीत धारण करवाया गया।[१]

३३. मसूदा से विदाई ली

मसूदा में स्वामी जी महाराज को रायपुर (मारवाड़) से कई बार बुलावा आया। श्री स्वामी जी ने राव साहेब को कहा कि हमें वहाँ जाना चाहिये। उन्होंने कहा, "मुझे आपका जाना अच्छा नहीं लगता। आप यहीं विराजें। मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा। वेद भाष्य करने की उत्तम व्यवस्था कर दूँगा।" स्वामी जी ने कहा, "आपकी प्रीति व धर्मभाव की तो मैं प्रशंसा

१. यह घटना सन् १८८१ की है। 'जिज्ञासु'

करता हूँ परन्तु हम साधुओं को एक ही स्थान पर रहना उत्तम नहीं है। देश-देश में जाकर उपदेश करना चाहिये।"

अन्ततः जाने की तैयारी हो गई! नियत दिन को मध्याह्नोत्तर राज मंत्री तथा नियत लोगों को श्रीमान राव साहेब ने बग्घी के साथ भेजा कि स्वामी जी दुर्ग में पधारें ताकि उनके मुख से सत्योपदेश सुनकर विदा करें। बग्घी पर सवार होकर बज़ार से निकलकर श्री स्वामी जी दुर्ग के द्वार पर पहुँचे जहाँ राव साहेब ने अत्यन्त श्रद्धा से महाराज का स्वागत किया तथा विशेष राजभवनों (महलों) व ड्योढ़ी से निकलकर स्वामी जी को यज्ञ मण्डप में आसन पर बिठाया गया।

स्वामी जी ने राजा व प्रजा धर्म पर एक व्याख्यान दिया। बाद में राव साहेब ने पत्र पढ़ा जिसमें ईश्वर प्रार्थना करके स्वामी जी की योग्यता के विषय में कहा गया था। श्रोता गद्‌गद होकर फूले न समाते थे। वे ईश्वर को धन्यवाद देते थे कि उसने ऐसे सत्संग को सुनने का अवसर दिया।

प्रस्थान के समय राव साहेब ने वेदभाष्य के लिये पाँच सौ रुपये[१] का सहयोग किया। महाराज के गले में पुष्पमाला भी डाली गई। चार सौ व्यक्ति आधे मील की दूरी तक विदा करने साथ गये। जहाँ स्वामी जी ने बग्घी को रोका और सबको धर्मोपदेश देकर विदा किया। राव साहेब स्वयं पाँच मील तक स्वामी जी को विदा करने गये।

३४. ऐसी श्रद्धा का पात्र ऐसा संन्यासी ही है

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह स्वामी जी से मनु धर्मशास्त्र आदि पढ़ते रहे। दरबारी लोग मनुस्मृति के सातवें अध्याय और महाभारत के कुछ विशेष पर्वों की कथा सुनते रहे। यहाँ यज्ञ, व्याख्यान व शास्त्रार्थ भी हुये। स्वामी जी महाराज ने यहीं पर अपने ग्रन्थों व प्रेस के बारे स्वीकार पत्र लिखा तथा परोपकारिणी सभा की स्थापना की। प्रत्येक दृष्टि से यहाँ सफलता प्राप्त हुई।

---

१. कुछ लेखकों ने लिखा है कि चार सौ रुपये दिये गये थे। 'जिज्ञासु'

जब यहाँ से प्रस्थान करने लगे तो दरबार ने दो सहस्र रुपये भेंट किये। स्वामी जी ने लेने से इनकार किया तो दरबार ने कहा कि हम भी वापस नहीं ले सकते अतः वैदिक निधि में जमा कराये गये। कहा गया कि आप छह शास्त्रों की टीका छपवा दें तो बीस-बीस सहस्र तक व्यय करूँगा। चलते समय महाराणा ने स्वामी जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया। विदा करते समय कहा कि कथनी करनी का धनी आपके अतिरिक्त कोई नहीं देखा। मुझे आपके सत्योपदशों से पर्याप्त लाभ पहुँचा है।

राजाओं तक में इस युग में यह श्रद्धा देखकर निश्चय होता है कि यदि संन्यासी सच्चे हों तो विद्या व धर्म का प्रसार करके वे सारे संसार को अपना बना सकते हैं। महाराणा ने सैकड़ों रुपये स्वामी जी के साथ वालों को तथा धार्मिक कार्यों के लिये दिया।

इसी प्रकार शाहपुराधीश जी भी स्वामी जी से पढ़ते रहे। वे तीन घण्टे स्वामी जी के सत्संग में रहते तथा प्रातः समय भी प्रायः स्वामी जी के साथ रहते थे।

जाते समय आपने २५००/- रुपये वेद भाष्य के लिया दिया था तीस रुपये मासिक एक उपदेशक के लिये देना स्वीकार किया। प्रस्थान करते समय बहुत दूर तक स्वामी जी के साथ गये। उनको मानपत्र भेंट किया कि ढाई मास आपकी संगति प्राप्त रही परन्तु जी भरा नहीं परन्तु जोधपुर महाराज का आग्रह है और स्वामी जी जाने का निश्चय कर चुके हैं साथ ही आपके होने से प्रत्येक स्थान के लोगों को लाभ पहुँचना है अतः आपको रोक नहीं सकता। हाँ! आशा करता हूँ कि आप शीघ्र पुनः पधारेंगे तथा हमें गौरवान्वित करेंगे।[१]

३५. सत्यान्वेषण की धुन

सत्यासत्य का निर्णय करने की धुन में श्री स्वामी जी सदैव डूबे रहते थे। कोई मौलवी व पण्डित जहाँ भी मिले उसे अपने

१. ये घटनायें सन् १८८२-१८८३ की है। 'जिज्ञासु'

पास बुलाकर अथवा उसके पास स्वयं जाकर आप शास्त्रार्थ अवश्य किया करते। यहाँ तक कि प्रो० मैक्समूलर को जर्मनी में चुनौती दे दी। उसने शास्त्रार्थ नहीं किया। यह तो एक दूसरी बात थी परन्तु स्वामी जी ने तो अपनी ओर से कोई कमी नहीं छोड़ी।

इसी प्रकार लुधियाना में आपको पता चला कि पटियाला में पं० हरिशराय संस्कृत के विद्वान् हैं। आप यह सुनते ही पटियाला के लिये चलने का उद्यत हो गये। रेल उन दिनों पटियाला नहीं जाती थी अतः डिप्टी कमिश्नर लुधियाना ने कौंसिल आफ़ रीजैन्सी पटियाला को पत्र लिखा कि आप स्वामीजी जी की सहायता करें। पण्डित हरिशराय तब तीर्थों पर गये हुए थे। अतः सूचना पाकर श्री स्वामी जी रुक गये।[१]

३६. एक रोचक शास्त्रार्थ

हरिद्वार में स्वामी जी रुग्ण हो गये। एक दिन व्याख्यान न हो सका। साधु इस अवसर को एक वरदान समझ कर शास्त्रार्थ के लिये उनकी ओर चल दिये। वे यह समझते थे कि स्वामी जी चुनौती अस्वीकार करेंगे और हम उनकी पराजय का समाचार फैला देंगे।

स्वामी जी खाट पर लेटे हुये थे परन्तु उन्हें आता देखकर उठकर बैठे और सत्कारपूर्वक बिठाकर आने का कारण पूछा। इस पर एक साधु जो सबसे बड़ा विद्वान् था बोला, "आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं।"

स्वामी जी:—"बहुत अच्छा। किसी विषय पर बात कीजिये।"

साधु जी:—"वेदान्त पर चर्चा करेंगे।"

स्वामी जी:—"पहले यह समझायें कि आपका वेदान्त से क्या अभिप्राय है?"

---

१. यह घटना किसी और ग्रन्थ में पढ़ने को नहीं मिली। लेखक ने उस काल के किसी लुधियाना निवासी से सुनी होगी। इस पुस्तक के लेखन व प्रकाशन के समय उस समय के कई आर्य पुरुष जीवित थे। 'जिज्ञासु'

साधु जी:–"इससे यह अभिप्राय है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है।"

स्वामी जी:–"जगत् से क्या अभिप्राय है? कौन-कौन पदार्थ जगत् के भीतर हैं और मिथ्या किसे कहते हैं?"

साधु जी:–"परमाणु से लेकर सूर्य तक जो कुछ है जगत् है और यह सब मिथ्या है अर्थात् झूठ है।"

स्वामी जी:–"तुम्हारा शरीर बोलना चालना, उपदेश, गुरु व पुस्तक भी इसी के भीतर हैं अथवा नहीं?"

साधु जी:–"हाँ! सब इसके भीतर हैं।"

स्वामी जी:–"और आपका मत भी इसके भीतर अथवा बाहर है?"

साधु जी:–"हाँ! वह भी जगत् के भीतर है।"

स्वामी जी:–जब तुम स्वयं ही कहते हो कि हम, हमारा गुरु, हमारा मत, हमारी पुस्तक, हमारा उपदेश, हमारा बोलना मिथ्या ही मिथ्या अर्थात् असत्य है तो हम तुम्हें क्या कहें? स्वयं आप ही के कहने से आपका दावा खारिज हो गया है। साक्षी आदि की कोई आवश्यकता नहीं।

साधु आश्चर्य चकित रहकर लौट गये। फिर कभी जत्था बाँधकर शास्त्रार्थ करने नहीं आये।[१]

३७. अजमेर के निकट एक ग्राम में कुछ साधु रहते थे। वे वाममार्गी थे और तन्त्र मन्त्रों के नाम से सिद्ध बने हुये थे। इस ग्राम के जो विद्यार्थी अजमेर कॉलेज में पढ़ते थे उन्होंने कहा, तुम्हारे मन्त्र सब झूठे हैं।" साधु बोले, "हम मन्त्रों की शक्ति दिखला सकते हैं।"

विद्यार्थियों ने कहा, "अभी दिखाओ।"

साधु:–"तुम्हारा गुरु कौन है?"

---

१. यह घटना ५ अप्रैल १८७९ की है। ऋषि कुम्भ मेला पर पधारे थे। 'जिज्ञासु'

विद्यार्थी:—"दयानन्द सरस्वती।"

साधु:—"बस! हम उसी को दिखा देंगे।"

विद्यार्थियों ने साधुओं से पक्का आश्वासन ले लिया और ठाकुरों को साक्षी बनाकर स्वामी जी को सारी बात आकर सुना दी।

उन्होंने कहा, "अभी बुलाओ। हम तो ऐसी बातों के निश्चय के लिये प्रति पल तैयार बैठे हैं।"

श्रोताओं ने पूछा, "आप निश्चय कैसे करेंगे।?"

ऋषिवर ने कहा, "वायु युक्त (airy) शीशे में मक्खी बन्द कर शीशे को पास रखकर उनसे कहा जायेगा कि इस मक्खी को मन्त्रों से मारो और यदि वे कहेंगे कि मनुष्य पर ही मन्त्र चलता है तो कहूँगा कि मेरे ऊपर चलाओ।"

इस पर ठाकुर व विद्यार्थी उन साधुओं के पास गये और उन्हें कहा, "आओ! स्वामी जी को अपनी शक्ति दिखाओ।" उन्होंने इसके लिये आपको बुलवाया है। क्रुद्धित होकर साधु बोले, "चलो! चलो! यहाँ कहाँ मन्त्र रखे हैं? क्या ऐसे मन्त्र दिखाये जाते हैं?"

जब लौटकर श्री स्वामी जी से उन्होंने यह बात बताई तो वे बोले कि तुम लोगों को बहकाने के लिये ही यह सारा प्रपञ्च रचा था। हमारा इधर आना हो गया तो पोल खुल गई अन्यथा आप धोखा खा जाते। हमने बहुतों को ऐसे जाल फैलाये देखा है।

३८. एक नवीन वेदान्ती विद्वान् आर्य बन गया

हरिद्वार के कुम्भ मेला पर एक दिन प्रातः समय ही आनन्द बन संन्यासी परमहंस के रूप में कफ़नी पहने पहले सिर मुण्डाय आया। उसके साथ दस विद्यार्थी भी थे। स्वामी जी ने बहुत प्रेम से सोत्साह आगे होकर उसका स्वागत किया। अत्यन्त आदर से उसे बिठाया गया। वह संन्यासी ८० वर्ष का होगा। वह शरीर से दृढ़ व फुर्तीला था। बैठकर दोनों हँसते मुस्कराते

शास्त्रार्थ करने लगे। वे संस्कृत बोलते थे। विषय था, जीव ब्रह्म की एकता। वार्तालाप चलता रहा। ग्यारह बजे उन स्वामी जी व उनके शिष्यों को भोजन के लिये कहा गया। साधु ने कहा, "जब तक इस विषय का निर्णय न हो जावे, मैं भोजन नहीं करूँगा।"

कई ग्रन्थ मँगवा लिये गये: –तब स्वामी जी महाराज ने चार वेद तथा ६०–६५ और ग्रन्थ मँगवा लिये। दो बजे तक अत्यन्त रोचक वार्तालाप चला। इसके पश्चात् वे अपने शिष्यों को सम्बोधित होकर बोला, "मैंने स्वामी दयानन्द के मत को स्वीकार किया। तुम भी ऐसा ही मानो।" श्री स्वामी जी महाराज ने उसके जाने के पश्चात् बताया कि यह बहुत बड़ा विद्वान् है। पहले ब्रह्म बना फिरता था परन्तु अब हमारे समान ही जीव व ब्रह्म का भेद स्वीकार कर लिया है।[१]

३९. निर्मला साधु भी बहुत पछताया

जोतसिंह नाम का एक निर्मला साधु हरिद्वार के कुम्भ मेला पर स्वामी जी से मिला। प्रत्येक बात व्यंगपूर्ण ही करता था। यहाँ तक कि स्वामी जी के एक भक्त को क्रोध आ गया। उस भक्त से रहा न गया। वह बोला पड़ा, "चुप हर अन्यथा मुँह ठीक कर दूँगा।

इसी प्रकार दो नांगे साधु भी अपने कठोर वचनों पर लज्जा अनुभव करने लगे। स्वामी जी बहुत प्रीति पूर्वक हँसते मुस्कराते हुये उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहे।[२]

४०. केवल दिखावे का कोलाहल

एक दिन हरिद्वार में एकत्र हुये समस्त विद्वानों तथा स्वामी सम्पतगिरि, जीवनगिरि तथा सतुआ स्वामी ढोले खाले पर एकत्र हुये तथा स्वामी विशुद्धानन्द के नाम एक पत्र लिखा। इसका विषय यह था कि यदि आप मध्यस्थ बनें तो स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करते हैं। आपको चाहिये कि दयानन्द को साथ लेकर

१. यह घटना फरवरी १८७९ के कुम्भ मेला की है। 'जिज्ञासु'

२. ये दोनों घटनायें भी १८७९ के कुम्भ मेले की ही है। 'जिज्ञासु'

शास्त्रार्थ के लिये आओ।

वही पत्र इन लोगों ने स्वामी जी महाराज के पास भिजवा दिया। उन्होंने उत्तर में लिखा, "आप नियम निश्चित करें फिर हमें शास्त्रार्थ करने में कोई संकोच नहीं।" उसके पश्चात् फिर कोई पत्र नहीं आया। न ही किसी ने नियम बनाकर भेजे। नियम तो क्या भेजने थे वहाँ उनके यहाँ तो शैवों व वैष्णवों में ही विवाद होकर बहुत झगड़ा व आपाधापी मची।

फिर पं० श्रद्धाराम फलौरी तथा पं० चतुर्भुज आदि जो पृथक्-पृथक् अड्डे जमाकर आर्यसमाज के विरुद्ध प्रचार करते थे सभी परस्पर मिल गये। निर्णय हुआ कि सब एक मत होकर पूरी शक्ति लगाकर स्वामी दयानन्द जी का सामना करें। इनका यत्न यह था कि भीड़ जमघट कहीं अपने स्थान पर हो। वहाँ हू हा करके अपना नाम कर लें। परन्तु स्वामी जी ने कहा, "व्यवस्था सरकारी हो जिससे भीड़ भाड़ में दंगा विवाद की कोई सम्भावना न रहे। शास्त्रार्थ सभ्य रीति से हो।"

परन्तु पं० श्रद्धाराम आदि को ये बातें मान्य नहीं थीं। स्वामी जी ने भी अन्त को यह कह दिया कि इन लोगों की भावना (मनोभाव) शोर शराबा करने के हैं अन्यथा श्रद्धाराम क्या तथा शास्त्रार्थ क्या? स्वामीजी महाराज ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि विशुद्धानन्द जी कह दें। कि ये लोग मेरे सामने वेद को समझते हैं तो मैं मान लूँगा और विशुद्धानन्द जी को ही मध्यस्थ मानता हूँ।

श्री स्वामी जी ने इस आशय का एक पत्र स्वामी विशुद्धानन्द जी को भी लिखा जिसे पढ़ते ही उन्होंने श्रद्धाराम तथा चतुर्भुज को इतनी गालियाँ दीं और ऐसे-ऐसे गन्दे शब्द कहे कि लिखते हुए लज्जा आती है। उन्होंने श्रद्धाराम आदि को कह दिया कि तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते। मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ में मध्यस्थ भी नहीं हो सकता। स्वामी जी को भी उन्होंने लिखा कि बहुत लोग दंगा करने के लिये एकत्र हुये हैं।

उनका ध्यान न करें। मैं इस सभा का मध्यस्थ नहीं हो सकता जिसमें आप सरीखें विद्वान् शास्त्रार्थ करें।

यह पत्र एक बहुत बड़े इकट्ठ (भीड़) में सुना दिया गई। फिर किसी ने शास्त्रार्थ की बात नहीं की। हाँ एक चाल चली गई। मेज पर पुस्तक रखकर कहा गया कि यदि तीन दिन पूर्व सभा करके दयानन्द यहाँ आकर शास्त्रार्थ न करने आवे तो उसे हारा हुआ समझा जाये। एक पत्र हस्ताक्षर युक्त स्वामी जी को भी भेजा गया कि आप यहाँ आकर वक्तृता करें। इस प्रकार सबको ठीक निश्चित हो जायेगा कि आपका कथन वेद शास्त्र के अनुसार है अथवा नहीं। यदि ठीक निकला तो हम सब आपके अनुयायी हो जायेंगे और आर्यावर्त्त का बड़ा लाभ होगा। यह पत्र जिस समय भेजा गया उस समय आवाज़ सुनाई देती थी कि यदि वह यहाँ आवे तो उसको पत्थर मारो। कुछ भी परवाह नहीं। यदि उसका सिर फूट जाये तो एक फाँसी चढ़ जायेगा।

स्वामी जी ने उत्तर में लिखा कि शास्त्रार्थ से मुझे कभी भी नकार नहीं, हर घड़ी तैयार हूँ परन्तु प्रबंधकर्त्ता कोई राजपुरुष हो।

पण्डितों के अतिरिक्त शास्त्रार्थ में कोई भी अनपढ़ ब्राह्मण न हो तथा स्थान ऐसा हो जो किसी पक्ष का न हो। आप जो स्थान कहते हैं वहाँ पर आने से मैं अपने जीवन की हानि समझता हूँ। मुझे शरीर पात हो जाने का शोक नहीं परन्तु इस बात का शोक है कि जिस उपकार के लिये इस शरीर की रक्षा करता हूँ वह उपकार रह जावेगा। इस कारण वहाँ आना मैं ठीक नहीं समझता।

इस पत्र का कोई उत्तर न आया और आता भी क्या? शास्त्रार्थ से उन्हें क्या लेना था? पण्डित श्रीधर जी डासना वालों ने श्रद्धाराम आदि को समझा दिया था कि भाइयो! दयानन्द परदेस का रहने वाला है। वेद का जानने वाला, बोलने में बहुत चतुर है। वेद का भाष्य भी इसी लिये किया है और केवल व्याकरणी (व्याकरण की बातें करने वाले) हो अतः वहाँ मत जायें। व्यर्थ

में नीचा देखना पड़ेगा। और ऐसा ही हुआ। केवल जगत् दिखावे की बातें थीं। लड़ाई दंगे के लिये ही सन्देश भेजते रहे।[१]

४१. ईसाई चर्च में मनुष्य पूजा का खण्डन

जब स्वामी जी बरेली में वह ऐतिहासिक व्याख्यान दे चुके जिसमें निडर होकर आपने कोलैक्टर व कमिश्नर तक को लताड़ लगाई। तब उठते ही श्री महाराज ने पूछा, "भक्त स्काट आज दिखाई नहीं देते।"

पादरी स्काट महोदय व्याख्यान से अनुपस्थित नहीं होते थे।

उनके अत्यन्त प्रेम के कारण ऋषिवर उन्हें भक्त कहते थे। जब पता चला कि आज रविवार है इस कारण वह नहीं आये क्योंकि रविार को वह चर्च में व्याख्यान देते हैं। नीचे उतरते ही कहने लगे, "चलो भक्त स्काट का चर्च देख आवें।"

लोग बहुत चले गये थे फिर भी तीन चार सौ व्यक्तियों सहित आप गिरजाघर में पहुँचे। स्काट जी का व्याख्यान समाप्त हुआ ही था। स्वामी जी को आता देखकर वह अविलम्ब नीचे उतरे तथा अपनी वेदी पर ले जाकर स्वामी जी से निवेदन किया कि आप कुछ उपदेश करें। स्वामी जी ने वहीं मनुष्य पूजा का खण्डन करते हुए एकेश्वरवाद व ईशोपासना का सन्देश दिया।[२]

शिक्षाः– पत्थरों पर सिर रगड़ने से प्रभु मिलता नहीं
शेख क्यों काबे में माथे को घिसाने चल दिया।

मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध आदि कुरीतियाँ जिनका ऋषि दयानन्द ने खण्डन किया, वेद में इनका कतई कोई उल्लेख नहीं मिलता। दुर्भाग्य से एक परम्परा चल पड़ी है तथा वेद विरुद्ध ऐसी बातें मनुष्य के स्वभाव में प्रविष्ट हो चुकी हैं अतः भ्रम हो जाता है

---

१. इस पत्र का सारांश ऋषि के पत्र व्यवहार में मिलता है। यह पत्र शास्त्रार्थ की चुनौती देने वाले पण्डितों के उत्तर में ७-४-१८७९ को लिखकर तत्काल भेजा गया था। फिर उधर से कोई उत्तर न आया। 'जिज्ञासु'

२. यह घटना सन् १८७९ की है। 'जिज्ञासु'

अथवा स्वार्थी लोग थोड़े समय के लिये भोले भाले लोगों को भ्रमित करने में सफल हो सकते हैं अन्यथा वास्तव में ऋषि दयानन्द ने अवैदिक बातों का हटाकर प्राणायाम योगाभ्यास की सच्ची रीति तथा यज्ञ संस्कार आदि की सच्ची सनातन मर्यादायें स्थापित करने में अपनी सारी शक्तियाँ लगाई हैं। यही सच्चे मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि मनुष्य मात्र को कुमार्ग पर जाने से बचावें। असत्य का खण्डन तथा सत्य का मण्डन कर जगत् को वेद मार्ग पर चलावें।

चौथा सर्ग

मृत्यु की पराजय

किन्तु पास तुम मेरे हरदम, मैं यह अब तक जान न पाया।
पाया पता 'प्रकाश' तुम्हारा तो फिर अपना पता न पाया।।[१]

प्रत्येक उलझन सुलझ जाती है। आसान हो जाती है और जिसका आदि है उसका अन्त भी होता है। इसी प्रकार प्रत्येक रोग की औषधि तथा प्रत्येक प्रश्न का उत्तर भी उपलब्ध है। साधारण पुरुष मनुष्य के जीवन व मृत्यु के प्रश्न को बिसार चुके हैं अतः इन प्रश्नों का उत्तर खोजना व समाधान करने का न तो उन्हें ध्यान है और न ही उन्हें जीवन की वास्तविकता व महत्ता का कुछ पता है। मृत्यु के बारे भी जन साधारण को कुछ ज्ञान है। उनमें ये तुच्छ विषय वासनायें व सांसारिक सुखों की इच्छायें ही घर किये रखती हैं परन्तु महान् आत्मायें व सच्चे पुरुष विषयों के सुखों को इन महान् प्रश्नों के सम्मुख तुच्छ समझते हुए इन पर लात मार देते हैं। उनके जीवन में जीवन के उद्देश्य व उसकी पूर्ति का पता चलता है। प्रश्न के साथ-साथ उसका उत्तर भी मिलता है।

ईश्वर की प्राप्ति जहाँ साधारण पुरुषों के लिये असम्भव होती है वहाँ योगी महात्मा अपनी सुध बुध बिसरा कर उसकी प्रेममयी गोदी में परमानन्द का उपयोग करते हैं।

इस प्रकार जिस मृत्यु को असाध्य समझा जाता है वह असाधारण महात्माओं के आगे हाथ बाँधे खड़ी होती है। ऋषि दयानन्द के सार्वजनिक जीवन का आरम्भ महादेव को साक्षात्

---

१. मूल में एक ऐसे उर्दू पद्य के स्थान पर मैंने 'प्रकाश' जी की ये पंक्तियाँ दे दी हैं। 'जिज्ञासु'

देखने तथा मृत्यु आदि दुःख की औषधि की खोज करने के दो प्रश्नों से हुआ था उनका अन्त दोनों प्रश्नों का समाधान करके दिखा गया। जीवन भर इस पुण्यात्मा पर जितने प्राणघातक प्रहार, वार व आक्रमण हुये वे इस तपस्वी आत्मा को इतना बलवान् बना गये कि उसके सम्मुख न रोग की कुछ वास्तविकता व महत्त्व रहा, न ही हलाहल उसे डरा सका तथा न ही शरीर के रोम–रोम में व्याप्त दुःख ही उसे रुला सके। न तो मृत्यु उसकी शान्ति में बाधा डाल सकी। ईश्वर के परमानन्द में जहाँ चित टिका हो वहाँ मृत्यु का दुःख कैसे निकट फटक सकता है। ऋषि दयानन्द का अन्तिम दर्शन स्पष्ट शब्दों में यह साक्षी देता है कि वे मृत्यु पर विजय पाने का नुस्ख़ा (Prescription) अपने जीवन के अन्तिम दृश्य से दर्शा गये।

१. धर्म रक्षक को विष दिया गया

जोधपुर में श्री स्वामी जी महाराज को महाराजा द्वारा बहुत श्रद्धा से आमन्त्रित किया गया। बिना किसी लाग लपेट के निर्भय होकर आप सत्य का मण्डन तथा असत्य का खण्डन करते रहे। कुछ दिनों पश्चात् आपको पता चला कि महाराजा ने नन्ही भक्तन[१] नाम की एक वेश्या रखी हुई है। राज्य की नीति का निर्धारण उसके परमार्श से ही होता है। एक दिन स्वामी जी महाराजा से मिलने गये तो उन्होंने स्वयं देखा कि महाराजा ने उसको पालकी को उठवाया। पालकी जो एक ओर झुकी तो महाराजा ने अपना कंधा अथवा हाथ लगवाया।[२] देशस्थ राजाओं

१. उर्दू में वेश्याओं के नाम के साथ 'जान' शब्द लगता है अतः मूल में 'नन्ही जान' ही छपा मिलता है। हमने उसका वास्तविक नाम यहाँ दिया है। कुछ लोगों ने स्वार्थवश इतिहास दूषित करने के लिये नन्ही को 'भक्तन' बता कर उसे पावन चरित्र की महिला बताने का दुस्साहस किया। राजस्थान में भक्तन जाति की कन्यायें वेश्या ही होती थीं। 'जिज्ञासु'

२. कुछ लेखकों का यह मत है कि ऐसी घटना नहीं घटी थी वैसे ऋषि ने एक पत्र लिखकर महाराजा को इस वेश्या के संसर्ग के लिये निर्भय होकर फटकार लगाई थी। 'जिज्ञासु'

की यह अवस्था देखकर उस सच्चे देश हितैषी के हृदय पर गहरी चोट लगी। उपदेश के समय आपने स्पष्ट कह दिया कि राजपुरुष सिंह सदृश है तथा वेश्या कुत्तिया के समान है। सिंहों के लिये उनका संसर्ग कदापि उचित नहीं है। इन वेश्याओं पर आसक्त मन कुत्तों सरीखा ही कार्य करता है। यह भले मनुष्यों का चलन नहीं है।

इसके पश्चात् ऋषि ने मिलने जुलने वालों से अनेक बार कहा कि वेश्याओं पर मरने वाले अत्यन्त घृणित व्यक्ति हैं। प्राचीन भारतीय राजा शूरवीर व जितेन्द्रिय होते थे। इतने पर ही बस नहीं आपने महाराज के भाई सर प्रतापसिंह को पत्र लिखा कि मुझे बहुत शोक है कि आप व बाबा साहेब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं। सोलह लाख लोगों की रक्षा व कल्याण का भार आप लोगों पर है। सुधार व बिगाड़ भी आप लोगों पर निर्भर है फिर भी आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा तथा आयु बढ़ाने के कार्य पर बहुत कम ध्यान देते हैं इत्यादि इत्यादि।[१]

इन सब बातों का परिणाम यह निकला कि महाराजा को इस वेश्या से कुछ-कुछ घृणा आरम्भ हुई[२] परन्तु वह वेश्या बदला लेने के लिये तुल गई। दूध जैसे सर्प के भीतर जाकर विष बनता है वैसे ही स्वामी जी का कथन संकीर्ण लोगों के हृदय में बहुत बड़े अत्याचार का बीज बना। नन्ही जान व्याख्यान के बारे सुनकर जल भुन गई फिर जब महाराज को अपने से कुछ घृणा

१. यह पत्र २३ जून १८८३ को लिखा गया। 'जिज्ञासु'

२. भारत के राजे महाराजे ऐसे वेश्यागामी थे कि उनके सुधरने के कोई लक्षण ही दिखाई नहीं देते थे। महर्षि ही पहले सुधारक, विचारक व महात्मा थे जिन्होंने रजवाड़ों को वेश्यागमन के लिये फटकार लगाई। महाराज जसवन्त सिंह मृत्यु से पूर्व अपने भाई प्रतापसिंह को नन्ही के साथ बहुत सद्व्यवहार का निर्देश दे कर गये। इसका इतिहास साक्षी है। श्रीकृष्णसिंह वारहट क्रान्तिकारी ने अपने निजी प्रामाणिक ज्ञान के आधार पर अपने इतिहास ग्रन्थ में इस पर सविस्तार प्रकाश डाला है। 'जिज्ञासु'

करता हुआ पाया तो लगी कहने कि स्वामी जी ने मेरे ऊपर बहुत अत्याचार किया है। जैसे भी हो प्रतिशोध लेना चाहिये।

वेश्याओं के लम्बे हाथः– वेश्याओं के व्यापक सम्बन्ध इस अंधकार के युग में सारा जग जानता है। और यह वेश्या भी ऐसी जिसने महाराजा को वश में कर रखा था। उसने अपने सारे रोब व प्रभाव का पूरा-पूरा प्रयोग किया। महाराजा तो अनपढ़ ब्राह्मणों से घृणा करते थे परन्तु यह वेश्या ब्राह्मणों को बहुत मानती थी। यह घोर मूर्तिपूजक थी।[१] मेहता विजयसिंह चक्रांकित मत के खण्डन से बहुत रुष्ट थे। भैय्या फ़ैज़ उल्ला ख़ाँ मुसाहेब तो घोर विरोधी था ही। ब्राह्मण पहले ही अपनी आजीविका की हानि समझ रहे थे। उन्हें भी नन्ही भक्तन की सहानुभूति का आधार मिल गया। बस फिर क्या था, कठपुतली बन गये और जो नाच नचाया गया नाचते गईं।[२] कई प्रकार से महर्षि को कष्ट दिये गये।

मिली भक्ति से सब कुछ हुआः– पहले तो जिस कहार पर स्वामी जी को बड़ा प्रेम व विश्वास था और जो अत्यन्त प्रीति से सेवा किया करता था वह छह सात सौ रुपये का माल

---

१. नन्ही भक्तन ने एक भव्य मन्दिर भी बनवाया था। हमने भी जोधपुर में यह मन्दिर देखा था। उसका घर भी वेश्याओं के मोहल्ला में हमने देखा था। वह कोई साधारण वेश्या नहीं थी। बड़ी साधन सम्पन्न थी। इस कारण जिन जिनके स्वार्थ पर चोट पड़ी वे सब लोग नन्ही के साथ हो लिये। सबकी आशायें उसी पर टिकी हुई थीं। 'जिज्ञासु'

२. महर्षि की मृत्यु का षड्यन्त्र रचने में किस-किस का कितना हाथ था यह जानने के लिये पाठक गंगा-ज्ञानधारा का तृतीय भाग अवश्य पढ़ें। अंग्रेज़ सरकार द्वारा पालित पोषित मिर्जाई मत का नवबी मिर्ज़ा गुलाम अहमद भी ऋषि की हत्या का श्रेय लेते हुए इतराता है। ऋषि के हलाक (Murder) करने में उसका व अंग्रेज़ का कितना हाथ था यह एक पृथक् विषय है। मिर्ज़ा अपना हाथ होना स्वीकार करता है। 'जिज्ञासु'

लेकर भाग गया। जो ब्रह्मचारी द्वारा पर सोता था उसे उस रात्रि वहाँ सोने ही न दिया। प्रातःकाल ही चोरी होने का शोर मच गया। महाराजा ने आदेश दिया कि जैसे भी सम्भव हो उस कहार को जहाँ से भी हो खोज कर लाया जावे। वह स्वयं जोधपुर राज्य के कठिन मार्ग व घाटियों से सर्वथा अपरिचित था फिर भी वह आश्चर्य का विषय है कि वह वहीं कहीं गुम हो गया। उसका कुछ भी अता पता न चला[१]

राज्य कर्मचारी हँसी उड़ाते थे:– इसी प्रकार इस षड्यन्त्रकारी जत्थे की कृपा से पहरे वाले तथा दारोगा आदि हृदय से विरोध करते रहते थे। स्वामी जी तर्जना करते तो यह लोग कर जोड़कर उनके सामने तो कुछ आज्ञा दे देते–कुछ कह देते और पीठ पीछे मिलकर ये सब हँसते थे थे अतः स्वामी जी का इन सब पर से विश्वास उठ गया था। जिन लोगों पर चोरी का सन्देह था उनके बारे में बड़े अधिकारियों द्वारा जानकारी तो ली गई परन्तु जेल में किसी को न डाला गया।

जोधपुर के कर्मचारियों पर विश्वास उठ गया:– ऐसे सब कारणों से राज्य के व्यक्तियों पर स्वामी जी का विश्वास जाता रहा और वे इस नगर से प्रस्थान करने का विचार करने लगे। तभी पाचक ने दूध में संखिया पीस कर मिलाया और स्वामी जी के वह दूध पिला दिया। उसी रात्रि उदर शूल व पेचश से बड़ा कष्ट हुआ। तीन बार वमन हुआ परन्तु आपने किसी को भी न जगाया। आप ही जल से कुल्ला करके सो गये। बहुत दिन

---

१. महाराजा कहता है कि उसे जहाँ भी हो पकड़ कर लाओ और वह पकड़ में न आया। वह परदेसी था। वहाँ की बोली भाषा से अपरिचित, वहाँ के आने जाने के मार्गों से सर्वथा अज्ञान फिर भी वह पकड़ा न जा सका। इससे तो यह एकदम स्पष्ट है कि ये सारी शरारतें बड़े–बड़े षड्यन्त्रकारी व्यक्तियों के कहे के अनुसार ही हो रही थीं। तब आवागमन के कोई विशेष साधन भी न थे फिर वह गया कहाँ? उसे छुपाया गया। जाना कहाँ था? 'जिज्ञासु'

चढ़े उठे तो फिर वमन किया। इस पर स्वामी जी महाराज को सन्देह हुआ फिर दूसरा वमन हुआ तो कहने लगे हमारा जीव उलटा आता है शीघ्र अग्निकुण्ड में धूप डाल सुगंधि कर कोठी से दुर्गंधि निकाल दो। इसके पश्चात् पेट में शूल चला तो आपने काढ़ा बनवाकर पिया जिससे अतिसार की छेड़छाड़ हो गई परन्तु शूल को चैन न पड़ा। तब डॉ० सूरजमल जी को बुलवाया गया जिन्होंने वमन बन्द करने की औषधि दी और जब स्वामी जी ने कहा कि अत्यन्त शूल हो रहा है तथा प्यास भी लगी है तब डॉक्टर साहेब ने प्यास बन्द होने की औषधि दी और कहा कि इस रोग का कारण यही है कि इस भयानक देश के जोधपुर नगर में ऐसे महात्मा का निवास न हुआ होता तो यह शूल काहे को जमता।

इसी प्रकार शूल बढ़ता गया। शरीर के सब अंगों में प्रविष्ट हुआ। श्वास के साथ बड़े वेग से चलता था परन्तु ऐसे दु:ख में भी स्वामी जी महाराज ने ईश्वर के ध्यान के उपरान्त कभी हाय तक नहीं की। सायं समय महाराज को सूचना मिली। उन्होंने तुरन्त डॉ० अली मर्दान खाँ को चिकित्सा के लिये भिजवाया परन्तु इस डॉक्टर का सारा इलाज ही उलटा पड़ता गया और इस लोकोक्ति के अनुसार:–

रोग बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की

असह्य कष्टों में कैसे शान्त रहे:– दिन प्रतिदिन स्वामी जी के कष्टों में वृद्धि होती गई। निर्बलता अत्यधिक हो गई। करवट बदलना, उठना दो चार व्यक्तियों की सहायता के बिना कठिन हो गई। हिचकियों के आधिक्य व उदर शूल ने शक्ति को और भी क्षीण कर दिया परन्तु धन्य थे स्वामी जी महाराज जो सब कष्टों को अत्यन्त शान्ति व धीरज से सहन कर रहे थे। हिचकी बहुत सताती तो दो–दो घंटा के पश्चात् प्राणायाम से उसका निवारण करते तो लोग बहुत आश्चर्य करते थे कि वह शरीर जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से, पूरे संयम व सावधानी से गढ़ गढ़कर

बना था किस प्रकार इसका नाश किया जा रहा था। हाँ स्वामी जी ने महाराजा प्रताप सिंह को स्पष्ट कह दिया था कि विष दिया गया था।[१] उपचार इलाज उलटा किया गया।

आर्य पुरुषों को सूचना तक न दी गई:– आर्य पुरुषों को महर्षि की इस अवस्था की जानकारी देने का कतई प्रबंध न किया गया।[२] विष दिये जाने के तेरह दिन पश्चात् आर्यसमाज अजमेर के एक सभासद ने पत्रिका में रुग्णता का समाचार पढ़कर सबको सूचना दी परन्तु पुराने अनुभव के आधार पर वे (आर्य लोग) यही समझे कि विरोधियों ने यह समाचार उड़ा दिया होगा। यदि सचमुच ऐसा होता तो उस समय तारों की भरमार हो जाती फिर भी उचित जानकर एक सभासद स्वामी जी के पास भेजा गया।[३] वह श्री महाराज को देखते ही दंग रह गया। उसने कहा, "भगवन्! यह क्या हुआ? तथा अधिक शोक तो इस बात पर है कि हमें सूचना तक भी नहीं दी गई।"

यह तो शरीर का धर्म है:– स्वामी जी ने कहा, **"रोग का क्या लिखते? यह तो शरीर का धर्म ही है। इसके अतिरिक्त तुम लोगों को क्लेश होता।"** इस प्रकार इस सभासद् के कारण अजमेर तथा वहाँ से सारे देश में समाचार प्रसारित हुआ। तार पर तार आने लगे। इसके पश्चात् प्रस्ताव हुआ कि स्वामी जी को आबू पर्वत ले चलो। स्वामीजी ने भी ऐसा ही

---

१. पं० लेखराम जी ने भी यह लिखा है तथा 'आर्य समाचार' मेरठ में भी अजमेर से भेजे गये वृत्तान्त में यह छपा है कि ऋषि जी ने 'फ़ासिद मादः' दिये जाने की बात कही। इस फ़ारसी शब्दों का स्पष्ट अर्थ Poisonous matter विषैली वस्तु ही है। 'जिज्ञासु'

२. जानबूझकर समाचार के दबाया छुपाया गया। राव राजा तेजसिंह ने मथुरा जन्म शताब्दी पर ऋषि को विष देने की बात तो कही परन्तु अलीमर्दान के इलाज पर चुप्पी साधे रखी। 'जिज्ञासु'

३. इनका नाम जेठमल सोढा था। यह अच्छे कवि भी थे। इन्होंने एक लम्बी कविता में ऋषि जीवन भी लिखा जो हमारे पास है। 'जिज्ञासु'

कहा परन्तु इसमें महाराज ने अपनी अपकीर्ति जानी परन्तु स्वामी जी ने जाने का विचार बना लिया।

इसी बीच महाराजा ने सिविल सर्जन को भी इलाज के लिये बुलवाया। उनका मत भी ऋषि को आबू ले जाने का था। यह खेद की बात है कि दो सप्ताह पर्यन्त रोग को दिन प्रतिदिन बढ़ते व जटिल होते देखकर भी इलाज न बदला गया। फिर सिविल सर्जन के साथ भी उसी **डॉक्टर को भी साथ जोड़े रखा।[१] बात केवल इतनी थी कि हितैषी लोग लज्जा के मारे बाहर बात नहीं कर सकते थे। जो देखभाल (आतिथ्य) करने वाले थे वे रोगी की मृत्यु ही ईश्वर से चाहते थे।**

अन्त को आबू जाने की तैयारी हुई। महाराजा ने बहुत शोक प्रकट किया तथा लज्जा भी अनुभव की परन्तु अब रोकना ठीक नहीं था अतः ढाई सहस्र रुपये तथा दो शाल भेंट किये गये। बहुत मान आदर के साथ स्वामी जी को विदा किया गया तथा मार्ग में सुविधापूर्वक यात्रा के लिये सब सामग्री दी गई जिससे स्वामी जी आबू तो पहुँच गये। मार्ग में अजमेर के एक नामी हकीम पीरजी से जो औषधि मँगवाई गई उससे प्यास आदि कुछ शान्त हुई[२] और आबू रोड स्टेशन से पर्वत पर चढ़ाई करते समय ज़िला जालंधर निवासी डॉक्टर लक्ष्मण दास मिल गये।[३] यद्यपि

---

१. अलीमर्दान तो एक निम्न श्रेणी का सहायक डॉक्टर था। जोधपुर में डॉ० रोडम व नवीनचन्द्र गुप्त के रूप में दो अत्यन्त योग्य डॉक्टर भी थे। यह क्रूर व्यवहार ही तो था कि उनका लाभ उठाया न गया। महाराज जसवन्तसिंह व कर्नल प्रताप सिंह इतने दिन पता करने तक न आये। कैसे क्रूर लोग थे। 'जिज्ञासु'

२. पीरजी ने जेठमल से सारी जानकारी लेकर तभी कह दिया कि महाराज को संखिया दिया गया है। 'जिज्ञासु'

३. डॉ० लक्ष्मणदास पं० भागराम जी अजमेर के सगे सम्बन्धियों में से थे। कुछ लेखकों ने इन्हें ज़िला शाहपुरा का निवासी लिखा है। हम पं० लक्ष्मण जी के मत को प्रामाणिक मानते हैं कि वह जालंधर ज़िला के थे। 'जिज्ञासु'

आप तब अपने आफ़ीसर के आदेश से अजमेर जा रहे थे तो भी स्वामीजी को बहुत रुग्ण देखकर वह स्वामी जी के साथ ही आबू आ गये। इनके दो दिन के उपचार से हिचकी बन्द हो गई तथा अतिसार भी बन्द हो गया परन्तु इन्हें अधिकारी ने बड़ी कठोर आज्ञा देकर अजमेर भेज दिया। उन्होंने बहुत अनुनय विनय की। त्यागपत्र तक दे दिया परन्तु श्री स्वामी जी महाराज ने ही वह त्याग पत्र लेकर फाड़ दिया।

डॉ० लक्ष्मण दास विवश थे। क्या करते? आपने दूसरी बार फिर त्यागपत्र दिया परन्तु डॉ० स्पैन्सर ने अस्वीकार कर दिया।[१] दो तीन दिने के लिये औषधि व खानपान के बारे में डॉ० लक्षणदास जी ने लिखकर दिया और फिर अजमेर चले गये। जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डॉ० रोडम व डॉ० गुरुचरणदास भी यहाँ देखते रहे। कुछ लाभ हुआ अत: वे अजमेर जाने के विरुद्ध थे परन्तु आर्यों के अनुरोध तथा डॉ० लक्ष्मण दास पर विश्वास एवं उनके आग्रह पर अजमेर जाने का निर्णय हो गया। इतना तो कहा तुम्हारी इच्छा से जाता हूँ अन्यथा मेरा जी नहीं चाहता।

२६ अक्टूबर १८८३ को महाराज ने आबू से अजमेर के लिये प्रस्थान किया। यह कहा कि आप लोगों की इच्छा से जाता हूँ अन्यथा मेरा मन नहीं मानता। उस दिन बहुत लोग दर्शनार्थ स्टेशन पर पहुँचे तथा उनकी अवस्था को देखकर घबरा गये। चार व्यक्तियों ने बड़ी सावधानी से आपको गाड़ी से उतारा। गाड़ी से उतरते ही मूर्छा आ गई। उन्हें पुन: पालकी में लिटाया गया। धीरे-धीरे पालकी कोठी पर ले आये। डॉ० लक्ष्मणदास की चिकित्सा आरम्भ की गई। परन्तु खेद है कि अब कोई भी औषधि कुछ भी प्रभाव नहीं कर पाई। कष्ट दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। हाथ पाँवों प्रत्युत सारे शरीर के ऊपर छाले पड़े गये थे। सब छालों को गर्म कपड़े से सेक किया जाता था। कहीं से पस

---

१. डॉ० स्पैन्सर भी तो जोधपुर राज्य का ही था। डॉ० लक्ष्मणदास की भक्ति पर हम बलिहारी तथा जोधपुर वालों की निष्ठुरता का भी क्या कहना! 'जिज्ञासु'

व कहीं से रक्त निकलता था। गले से लेकर नाभि तक छाले पड़ गये थे। एक आर्य ने गला बैठ जाने का कारण पूछा तो आपने मुख को खोलकर दिखाया तथा धीरे से बोले कि नाभि तक छाले पड़ गये हैं। श्वास बहुत शीघ्र आता था। स्वामी जी श्वास रोक रोककर फिर जल्दी ज़ोर से श्वास निकाल देते थे तथा कुछ ईश्वर का ध्यान भी करते थे। संयम तो अद्भुत था। कष्ट का संकेत तक नहीं करते थे।[१] बैठकर निरन्तर टकोर करवाते हाँ कभी इतना पूछते थे–**"जो कुछ करना था हो चुका कि नहीं?"**

प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो

किया मौत ने तेरी हर सू उजाला।
दयानन्द स्वामी तिराबोल बाला।।

३० अक्तूबर १८८३ को अजमेर के डॉ० न्यूमैन साहेब को बुलवाया गया। आप देखते ही बोले कि यह व्यक्ति बहुत लम्बा चौड़ा, साहसी तथा रोग को सहने वाला है। इतना असह्य रोग तथा यह अपने आपको दु:खी नहीं मानता था स्वयं को सम्भाले हुये अभी तक जीवित है। डॉ० लक्ष्मणदास ने स्वामीजी का नाम बताया तो डॉ० न्यूमैन का शोक और भी बढ़ गया। जो कुछ उनकी समझ में आया उन्होंने उपचार किया। पीर इमाम अली भी आये परन्तु नश्वर देह को कब तक बचाया जा सकता था।

जब भी अत्यधिक कष्ट हुआ तो स्वामी जी से उनका वृत्त पूछा गया उन्होंने अच्छा ही कहा परन्तु आज ग्यारह बजे तो आपका कण्ठ भी खुल गया। यह अन्त का सम्भाला था परन्तु समझा गया स्वास्थ्य में सुधार। स्वामी जी ने स्वयं कहा कि आज जैसा आपका जी चाहे भोजन बनाओ। भिन्न-भिन्न प्रकार

---

१. महात्माओं के जप, तप, भक्ति भजन की परख की यही वेला होती है। शरीर का रोम रोम में विष प्रविष्ट होने से छाले फूट रहे थे परन्तु ऋषिवर ने एक बार भी दु:ख व पीड़ा का संकेत नहीं किया। मृत्यु से बड़ा दु:ख और है भी क्या? हँसते-हँसते देह का त्याग करने को वे पूरी तैयारी कर चुके थे। 'जिज्ञासु'

का भोजन पका कर सामने मेज पर रखा गया जिसे देखकर श्री स्वामी जी ने कहा, "बस ले जाओ।" केवल एक चमच चने का पानी ही लिया।

लाला जीवनदास जी लाहौर से आये थे। आपने पूछा, "महाराज! कहिये प्रकृति कैसी है?"

कहा, "अच्छी है आज एक मास के पश्चात् चैन का दिन है।"

एक बार विचार आया कि स्वामी जी होश में नहीं है। परीक्षा के लिये पूछा, "स्वामी जी! आप इस समय कहाँ हैं?" उत्तर दिया, "ईश्वरेच्छा में।"[१]

पीड़ा को सहन करने में ऐसी सिद्धि थी कि माथे पर जो छाला था उसे आपने हाथ से रगड़ डाला। नापित को कहकर बुलवाया तो वह मुखड़े पर उस्तरा नहीं फेरता था। उसे फोड़ों से रक्त बहने के विचार से ऐसा करने से संकोच हो रहा था। ऋषिवर ने कहा, "कोई चिन्ता मत करो सब पर उस्तरा फेर दो।" ऐसा ही किया गया। इसके पश्चात् आपने वस्त्र से सिर को पोंछा कारण स्नान से सबने रोक दिया था।[२]

---

१. ऋषि के देह-त्याग के समय की घटनाओं पर तथाकथित स्कालरों ने कभी विचार ही नहीं। ऋषिवर की योग साधना, प्रभु भक्ति का परिचय उस समय जो मिला उसको समझने विचारने की आवश्यकता है। मरने वाले की जाँच के लिये ही तब पूछा जाता है कि आप कहाँ हैं। ऋषि उत्तर देते हैं:-
'ईश्वरेच्छा में'
प्रभु के प्यारे उस योगेश्वर उस महर्षि उस मृत्युञ्जय का वास्तविक चित्र तो यही है। 'जिज्ञासु'

२. यह कोई कम महत्त्व की बात नहीं कि ऋषि ने कहकर नापित को बुलवाया। देह-त्याग के समय क्षौर की क्या सूझी! प्यारे प्रभु से मिलने की तैयारी में लगे थे। जब दो पैसे में नापित मूंड देता था, कहा, "इसे पाँच रुपये दो।" इस घटना पर श्री डॉ० भारतीय जी ने प्रश्न उठाया था। हमने उत्तर में लिखा कि प्रत्यक्ष दर्शी दीवान हर बिलास सारडा ने तो लिखा है। हमारे पूज्य पं० लक्ष्मण जी ने भी ला० जीवनदास आदि से पूछकर अपने बृहत् ग्रन्थ में यह घटना दी है। देह नश्वर है। मरने का डर किस लिये? ऋषि की यह भी तो पहचान है। 'जिज्ञासु'

चार बजे के पश्चात् आपने स्वामी आत्मानन्द जी को बुलवाया था। वे आकर आपके सामने खड़े हो गये। श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, "पीछे की ओर आकर खड़े हो जावें अथवा बैठ जाओ।"

आत्मानन्द जी सिरहाने आकर बैठ गये। तब पूछा, "आत्मानन्द क्या चाहते हो?"

आत्मानन्द जी ने कहा, "ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप स्वस्थ हो जायें।"

श्री स्वामी जी कुछ रुककर बोले, "यह देह है। इसका क्या अच्छा होगा?"

फिर स्वामी आत्मानन्द जी के सिर पर हाथ धर कर कहा, "आनन्द से रहना।"

यही बात गोपाल गिरि संन्यासी से हुई। वह काशी से मिलने को आये थे। यह अवस्था देखकर सब स्थानों से आये हुए आर्य पुरुष स्वामी जी के सामने आकर खड़े हो गये। स्वामी जी ने ऐसी कृपा दृष्टि से सबकी ओर देखा कि लेखनी व वाणी से इसका वर्णन करना कठिन है। वह दृष्टि मानो कि अपनी मूकवाणी से आर्यों को यह कह रही थी कि तुम क्यों उदास हो। धीरज धरना चाहिये।

सूर्य अस्ताचल की ओर– इसके पश्चात् दो सौ रुपये तथा दोशाले आत्मानन्द जी तथा पं० भीमसेन जी को दिये परन्तु उन्होंने लौटा दिये।[१] उस समय पाँच बज गये थे। महाराज से प्रकृति के बारे पूछा गया तो कहा,

"अच्छा है। तेज व अंधकार का भाव है।"

---

१. मुद्रण दोष से अथवा भूलवश पं० भीमसेन की बजाय मूल में डॉ० लक्षमणदास का नाम छपा मिलता है। दीवान हरबिलास आदि का लेख ही प्रामाणिक है कि स्वामी आत्मानन्द जी के साथ पं० भीमसेन को दोशाले दिये। 'जिज्ञासु'

सब श्रोता इसका अभिप्राय न समझ पाये। साढ़े पाँच बजे आपने पूछा, "कौन सा पक्ष, क्या तिथि तथा क्या वार है?" किसी ने कहा, "कृष्ण पक्ष का अन्त तथा शुक्ल पक्ष आदि अमावस मंगलवार है।" तब आपने छत व दीवारों पर दृष्टि डाली फिर वेद मन्त्रों का उच्चारण किया। तत्पश्चात् संस्कृत में ईशोपासना की फिर भाषा में ईश्वर का गुण कीर्तन किया गया।[१] फिर बड़ी प्रसन्नता व हर्षपूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ किया। फिर हर्षित व प्रफुल्लित चित से कुछ समय के लिये समाधिस्थ रहकर नेत्र खोले और कहा, "दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा! तू ने अच्छी लीला की।" वहीं करवट बदली तथा श्वासों को रोक कर एकदम बाहर निकाल दिया।[१]

उस समय कुछ भाई चाहते थे कि खाट से उतारा जाये परन्तु बहुराय से ऐसा नहीं किया गया। प्राण त्यागने के समय महाराज की आँखें खुली रह गईं। **ला० जीवनदास जी ने बन्द कीं परन्तु पूरी बन्द न हुईं।**

'आहा' शब्द का हृदय स्पर्शी उच्चारणः– प्राण विसर्जित करते हुये **'आहा'** शब्द का उच्चारण ऋषि ने ऐसे किया था कि जैसे कोई व्यक्ति वर्षों से बिछड़े हुये प्रिय मित्र को मिलने पर हर्षोल्लास व्यक्त करते हुये करता है। उस समय की उनकी मनः स्थिति इसी प्रकार की प्रसन्नता की थी। यही कारण है कि उनकी इस निराली प्रसन्नता ने महान् मनीषी प्रकाण्ड पण्डित

---

१. कविरत्न 'प्रकाश' जी ने इस दृश्य का वर्णन इन सरस भावपूर्ण पंक्तियों में किया है:
जब कि बुझने लगा शहर अजमेर में
देह दीपक दयानन्द ऋषिराज का
तेरी इच्छा हो पूर्ण हे प्यारे प्रभु
बोलकर वाक्य यह मुस्कराने लगे

श्रीमान गुरुदत्त जी विद्यार्थी को ईश्वर की सत्ता का अत्यन्त प्रबल व्यावहारिक प्रमाण बिना कुछ कहे दे दिया। पं० गुरुदत्त तब खड़े हुये चुपचाप दत्तचित होकर इस अवस्था पर मनन कर रहे थे और योग सिद्धि का फल देख रहे थे।[१]

१. यह पैरा हमने लेखक के बृहत् ग्रन्थ 'मुकम्मिल जीवन चरित्र ऋषि दयानन्द' के पृष्ठ ९१७ से उद्धृत किया है। वहाँ यह पाद टिप्पणी के रूप में दिया गया है। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर लेखक ने उस सर्ग की घटनाओं से मिलने वाली सीख को 'शिक्षा' शीर्षक से दिया है। इस सर्ग की समाप्ति के ये दो पृष्ठ हमने छोड़ दिये हैं। 'जिज्ञासु'

निर्देशिका

फ

ब

भ

म

य

र

स

ह